हिंदी के टुकड़े-टुकड़े करने की कोशिशें और राष्ट्रहित

पिछले कुछ समय से हिंदी की बोलियों के नाम पर गठित संस्थाओं द्वारा संविधान की अष्टम अनुसूची में हिंदी की बोलियों को जोड़ने की मांग रह रह कर उठने लगती है। हिंदी का कुछ बोलियों को संविधान की अष्टम अनुसूची में स्थान मिलने के बाद तो होड़ सी लग गई है। बोलियों के स्वयंभू प्रतिनिधियों द्वारा संस्थाएँ आदि बना कर बोलियो की अस्मिता, सम्मान आदि की बातें की जाने लगी हैं। इनमें से अधिकांश का यह भी कहना है कि वे हिंदी के विरोधी नहीं है, वे तो हिंदी के साथ हैं। लेकिन इसके बावजूद वे संविधान की अष्टम अनुसूची में हिंदी के समकक्ष अलग स्थान की बात भी करते हैं। बोलियों के नाम पर क्षेत्रवाद की भावना से भीड़ जुटाना आन्दोलन करना तो कठिन भी नहीं। राजनेताओं को तो इसीकी दरकार होती है। लेकिन विचार का विषय यह है कि इससे भारतीय भाषाओं, बोलियों और राष्ट्रीय एकता पर दीर्घकालिक प्रभाव क्या होंगे ? इस संबंध में हमें व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठकर व्यापक राष्ट्रीय हितों की दृष्टि से विचार किए जाने की आवश्यकता है।

हिंदी क्या है – हिंदी, भारत की आधुनिकतम भाषा है, जो हिंदी भाषी क्षेत्र में बोली जाने वाली विभिन्न बोलियों, उप बोलियों आदि के समन्वित रूप में विकसित एवं प्रचलित हुई है। देश में जो भी अपने को हिंदी भाषी कहते हैं, वे प्राय : सभी किसी न किसी बोली को बोलने वाले हैं। यदि इन बोलियों को संविधान में अलग-अलग स्थान दे दिया जाए तो प्रश्न उठता है कि देश में हिंदी-भाषी होगा कौन ? मुझे नहीं लगता कि तब हिंदी किसी जिले की भी भाषा हो सकेगी। हिंदी बोलियों का एक पुष्पगुच्छ है, यदि इस पुष्पगच्छ के बोली रूपी सभी पुष्पों को पुष्पगुच्छ से बाहर कर दिया जाए तो हिंदी क्या होगी ? उसमें बचेगा क्या ? मुठ्ठी में से अंगुलियों को अलग करने पर बचेगा क्या ?

देश के तमाम स्वतंत्रता सेनानियों, विचारको, विद्वानों और संविधान निर्माताओं ने बहुत सोच-समझ कर हिंदी की अनेक बोलियों और उपबोलियों को हिंदी का अभिन्न अंग मानते हुए संविधान की अष्टम अनुसूची में केवल हिंदी को ही रखा और उसे संघ की राजभाषा भी घोषित किया। किसीने भी इस पर कोई प्रश्नचिह्न नहीं लगाया। संविधान सभा में तो विभिन्न बोलियों को बोलने वाले सदस्य मौजूद थे। तो क्या उन्हें अपनी बोलियों से प्रेम नहीं था ? संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ राजेंद्र प्रसाद स्वयं भोजपुरी क्षेत्र से थे, तो क्या उन्हें भोजपुरी से प्रेम न था। आजादी के 60-70 साल बाद अब अचानक बोलियों के झंडाबरदारों को लगा कि अब उनका अलग अस्तित्व होना चाहिए।

पहले हमें यह भी देखना होगा की ये मांग करने वाले कौन हैं ? यह तो स्पष्ट है कि यह आम जनता की मांग तो कतई नहीं है। इस मांग के पीछे दो ही तरह के लोग हैं, बोली विशेष के पुरोधा और नेता। राजनेताओं में बोलियों के नाम पर लोगों की क्षेत्रीय भावनाओं के माध्यम से वोट बैंक बनाने की ललक है, जैसा कि हमारे देश में धर्म, जाति, क्षेत्र आदि के नाम पर होता रहता है। और थोड़ा आगे बढ़कर यह विभाजन इस आधार पर अलग राज्य की मांग की तरफ भी बढ़ने लगता है। मिथिलांचल की मांग शुरू हो चुकी है। भोजपुरी की मांग के पीछे पूर्वांचल की माँग भी छिपी नहीं। दूसरे उस बोली के स्वयंभव

पुरोधा, लेखक, साहित्यकार आदि।

बोलियों के साहित्यकारों का कहना है कि अष्टम अनुसूची में न होने से उन बोलियों में लिखे जानेवाले श्रेष्ठ साहित्य की कोई पूछ नहीं, उन्हें कोई सम्मान नहीं मिलता। एकदम सही बात है। इसका विश्लेषण जरूरी है। यदि हम 2011 के जनगणना के आंकड़ों को भी लें तो हम पाते हैं कि हिंदी क्षेत्र की कई बोलियों को बोलने वालों की संख्या करोड़ों में है, उनमें कुछ उन्नत साहित्य भी है। लेकिन उसे पूछनेवाला कोई नहीं है। जो अष्टम अनुसूची में होगा, उसे पुरस्कार मिलेगा। भले ही उसके बोलने वालों की संख्या कितनी ही कम क्यों न हो, कैसा ही साहित्य हो। जो अष्टम अनुसूची में नहीं होगा उसे पुरस्कार नहीं मिलेगा, भले ही उसके बोलने वालों की संख्या बहुत ज्यादा क्यों न हो, श्रेष्ठ साहित्य ही क्यों न हो। 2011 की जनगणना के अनुसार बोडो 0.12%, मणिपुरी 0.15 %, कोकणी 0.19 %, डोंगरी 0.21%, सिंधी 0.23%, नेपाली 0.24%, कश्मीरी 0.56%, संथाली 0.61% ये सब 1% से काफी कम है। जबकि हिंदी और इसकी बोलियों सहित हिंदी भाषी 43.6 प्रतिशत उसके लिए भी एक ही पुरस्कार, बोली साहित्य की कोई पूछ नहीं। यानी अष्टम अनुसूची में आने पर पुरस्कार का रास्ता खुल जाता है। ऐसे में असंतोष तो होगा ही। अष्टम अनुसूची में आने की लड़ाई तो होगी ही, स्वभाविक है।

एक बहुत बड़े झगड़े की जड़ हैं साहित्य अकादमी के पुरस्कार। जो श्रेष्ठ साहित्य से अधिक महत्व संविधान की अष्टम अनुसूची और अपने द्वारा बनाई गई बोली-भाषाओं की सूची को देती है। आश्चर्य की बात यह कि अनेक बोलियों, उपबोलियों में निहित श्रेष्ठ साहित्य को प्रतियोगिता से बाहर रखा जाता है और चुपके से अंग्रेजी को गोद में बैठा लिया जाता है। साहित्य अकादमी को इन तमाम बिंदुओं पर गहन विचार मंथन करना चाहिए ताकि सूचियों और अनसूचियों के जाल में श्रेष्ठ साहित्य की उपेक्षा या सतही साहित्य को पुरस्कृत न किया जाए। इसके लिए साहित्य अकादमी जैसे पुरस्कारों को अष्टम अनुसूची या अन्य किसी सूची से पूरी तरह अलग कर दिया जाना चाहिए। साहित्य अकादमी जितने भी पुरस्कार देना चाहती है वह दे, किसी अनुसूची को ध्यान में रखकर नहीं, बल्कि श्रेष्ठ साहित्य को ध्यान में रखकर। फिर वह श्रेष्ठ साहित्य देश की किसी भी भाषा, बोली, या उप बोली में ही क्यों न हो। साहित्य का पुरस्कार श्रेष्ठता के कारण मिले, न कि किसी भाषा बोली के किसी सूची में होने के चलते। बड़ी से बड़ी भाषा बोली में यदि श्रेष्ठ साहित्य नहीं लिखा गया तो पुरस्कार नहीं मिलना चाहिए, अगर किसी छोटी से छोटी बोली या उपबोली आदि में भी श्रेष्ठ साहित्य है तो उसे सम्मान मिलना चाहिए। यही न्याय संगत है, यही होना चाहिए। संस्कृति मंत्रालय को भी इस पर विचार करना चाहिए।

इनकी दूसरा माँग है बोली-भाषा में शिक्षा। नई शिक्षा नीति ने इस मांग को पूरा कर दिया है। पूर्व-प्राथमिक यानी प्री-प्राइमरी तक तो ठीक है कि बच्चा अपने घर की भाषा-बोली में पढ़ें। उसके आगे यह कितना व्यवहारिक होगा, यह विचार का विषय है। मैं हरियाणवी भाषी हूँ, घर में हम हरियाणवी ही बोलते हैं। हरियाणवी में रागनियों के रूप में लोकगीत, लोक-संगीत और स्वांग आदि हैं। लेकिन मुझे याद नहीं आता कि अपने जीवन में मैंने कोई घरेलू पत्र भी हरियाणवी में पढ़ा हो, ऐसे में हरियाणवी माध्यम से शिक्षा, कितनी व्यावहारिक है ? मेरी पत्नी भोजपुरी क्षेत्र से थीं। मुझे याद नहीं आता कि मेरे ससुर ने भी कभी अपनी बेटी को कभी कोई पत्र भोजपुरी में लिखा हो। ऐसे में बोलियों के माध्यम से शिक्षा कैसे होगी, यह विचार का विषय है। हाँ, इनके चलते बोलियों के विश्वविद्यालय, संस्थान, भाषा-आयोग, शब्दावली आयोग आदि बनेंगे, तो कुछ लोगों को पद भी मिल जाएँगे। फिर भी यदि कोई

अपनी बोली में पढ़े, किसे ऐतराज है, जो पढ़ना चाहे वह पढ़े। इसके लिए हिंदी के टुकड़े – टुकड़े करने की क्या जरूरत है ?

एक मुद्दा है, सिविल सेवा परीक्षा में सफलता के लिए अष्टम अनुसूची के जरिए पिछले दरवाजे की तलाश। कुछ लोग सोचते हैं कि उनकी बोली अष्टम अनुसूची में आ जाएगी तो भारतीय सिविल सेवा परीक्षाओं में बोली साहित्य चुन लेंगे। ज्यादा साहित्य नहीं तो ज्यादा पढ़ना नहीं। उस बोली का व्यक्ति ही पेपर जांचेगा तो उन्हें भरपूर अंक देगा। सिविल सेवा के माध्यम से उच्च पद पाने में सुविधा हो जाएगी। शायद वे गलत भी नहीं हैं। कुछ लोगों को इस प्रकार भाषा और धार्मिक विषयों आदि के आधार पर काफी लाभ मिलता रहा है। हमें ऐसी व्यवस्था करनी होगी कि ऐसे चोर दरवाजों पर रोक लगे।

किसीने कहा कि उन्हें विधान सभा व संसद में अपनी बोली में शपथ लेने तक का अधिकार नहीं है। अगर कोई विधायक या सांसद अपनी बोली भाषा में शपथ लेना चाहे तो उसे लेने दीजिए, उसमें परेशानी क्या है ? यह तो कोई बड़ी समस्या नहीं। लेकिन ये कहने भर की बातें हैं, निशाना तो कहीं ओर है।

हालांकि, इस सबके बावजूद मेरा यह दृढ़ मत है कि देश-प्रदेश की संस्कृति को आगे बढ़ाने में भाषा से भी बड़ी भूमिका बोलियों की होती है। देश में जितने भी स्वांग, नाटक, नौटंकी लोकगीत, संगीत, कृषि और धर्म आदि से जुड़े तमाम सांस्कृतिक कार्यक्रम, ये सब बोलियों में ही हैं। यदि देश-प्रदेश की संस्कृति को बचाना है तो हमें निश्चय ही सभी बोलियों को भी बचाना और बढ़ाना होगा। इसके लिए संघ सरकार के सहयोग से संबंधित राज्यों द्वारा उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

लेकिन यक्ष प्रश्न यह है कि क्या केवल अकादमियों और पुरस्कारों से बोलियाँ बच या बढ़ सकती हैं ? अष्टम अनुसूची में आने से क्या कोई चमत्कार हो जाएगा ? मैथिली, बोडो, डोगरी और संथाली के संविधान की अष्टम अनुसूची में आ जाने से किसने कितना लाभ उठाया ? इस पर तो चर्चा हो सकती है, लेकिन इनकी स्थिति में क्या बदलाव आया ? कितने लोग जो कल तक इन्हें नहीं बोलते थे, अष्टम अनुसूची में आने पर बोलने लगे ? बदलाव तो तब आएगा जब इन बोलियोंवाले इन्हें अपनाएँगे, प्रयोग में लाएँगे। लोक गीत-संगीत को अपने जीवन का अंग बनाएँगे। जब कोई बोली – भाषा हमारे रोम-रोम में बसती है तब उसमें गीत-संगीत की तरंगें उपजती हैं, स्वभाविक साहित्य के अंकुर प्रस्फुटित होते हैं।

आज हम हिंदी साहित्य में सभी बोलियों का साहित्य पढ़ते हैं। अगर हिंदी के टुकड़े –टुकड़े हुए तो फिर क्या होगा ? अवधी का साहित्य केवल अवधी भाषी और ब्रजभाषा का ब्रजभाषी। चारण-भाटों आदि द्वारा रचा गया वीर रस का काव्य केवल राजस्थान में ही पढ़ा जाएगा ? ऐसा ही दूसरी जगह भी होगा। तब कोई हिंदी भाषी ही न होगा तो हिंदी साहित्य और हिंदी क्षेत्र की समस्त बोलियों (जो कभी भाषाएँ थीं।) का साहित्य भी सब न पढ़ सकेंगे। हिंदी के टुकड़े – टुकड़े करने के पैरवीकारों के चलते तब हिंदी का साहित्य भी टुकड़े – टुकड़े हो कर बिखर जाएगा। भोजपुरी और राजस्थानी में तुलसी दास, सूरदास, मलिक मोहम्मद जायसी पढ़ाने का आधार क्या होगा ? यही चला और लोगों के बीच ऐसी

दीवारें खड़ी की गईं तो क्या होगा, तुलसी हमारे, सूर तुम्हारे, हमारे तो दोनों नहीं, हो गए बंटवारे। राम तो हमारे हैं, पर रामचरित मानस हमारा न होगा, क्योंकि हम तो अवधी नहीं, राजस्थानी हैं, हरियाणवी हैं, बुंदेली हैं, भोजपुरी हैं, गढ़वाली हैं, वगैरह- वगैरह। इस तरह तो लोगों के दिलों में भी विद्वेष के टुकड़े – टुकड़े हो जाएँगे। यह राष्ट्रीय एकता के लिए भी घातक होगा।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि देश कि एक बड़े भूभाग पर बोली जाने वाली 30-40 बोलियों और उप बोलियों आदि का सामूहिक व समन्वित रूप यानी हिंदी, जो विभिन्न राज्यों और संघ की राजभाषा होने के बावजूद भी आज, शासन-प्रशासन, ज्ञान–विज्ञान, व्यापार-व्यवसाय, शिक्षा-रोजगार आदि में अपना उचित स्थान पाने के लिए संघर्षरत है। अन्य भारतीय भाषाओं की भी स्थिति भी कमोबेश ऐसी ही है। कुछ विद्वानों का आकलन है कि यदि यही स्थिति रही तो दो–तीन पीढ़ी बाद हमारे बच्चे किसी महत्वपूर्ण कार्य के लिए अपनी भाषा नहीं बोल रहे होंगे। आज अंग्रेजी गाँवों की चौखटों को लांघ कर वहाँ भी अपनी जगह बना चुकी है। बोली तो बोली, हिंदी को ठेंगा दिखा रही है। ऐसे में मुट्ठी को विघटित करना, अपनी भाषाओं और बोलियों के स्थान पर पूर्णत : अंग्रेजी का संपूर्ण साम्राज्य स्थापित करने का इससे बढ़ कर कोई रास्ता नहीं हो सकता।

ऐसे में यदि हमने अपनी नादानी या लाभ-लोभ के चलते हिंदी की एकजुट मुट्ठी को टुकड़े-टुकड़े किया तो क्या होगा, इसका अनुमान भी सिहरन पैदा करने वाला है। और एक बार यह विघटन प्रक्रिया प्रारंभ हुई तो आगे चलकर देश की अन्य भाषाएँ भी विघटन की राह पर चलते हुए अंग्रेजी के सामने दम तोड़ने लगेंगी। इसलिए आज हम सबको इन तमाम बिंदुओं पर ईमानदारी से विचार करना चाहिए और अपने व्यक्तिगत हितों से उपर उठ कर राष्ट्र के स्तर पर विचार करना चाहिए।

वैश्विक हिंदी सम्मेलन, मुंबई
vaishwikhindisammelan@gmail.com